राम का दंडकवन प्रवेश, जटायु मिलन, पंचवटी निवास और श्री राम-लक्ष्मण संवाद

*** है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पंचबटी तेहि नाऊँ॥ दंडक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिबर कर हरहू॥8॥
भावार्थ:-हे प्रभो! एक परम मनोहर और पवित्र स्थान है, उसका नाम पंचवटी है। हे प्रभो! आप दण्डक वन को (जहाँ पंचवटी है) पवित्र कीजिए और श्रेष्ठ मुनि गौतमजी के कठोर शाप को हर लीजिए॥8॥
*** बास करहु तहँ रघुकुल राया। कीजे सकल मुनिन्ह पर दाया॥ चले राम मुनि आयसु पाई। तुरतहिं पंचबटी निअराई॥9॥
भावार्थ:-हे रघुकुल के स्वामी! आप सब मुनियों पर दया करके वहीं निवास कीजिए। मुनि की आज्ञा पाकर श्री रामचंद्रजी वहाँ से चल दिए और शीघ्र ही पंचवटी के निकट पहुँच गए॥9॥
दोहा :
*** गीधराज सै भेंट भइ बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ। गोदावरी निकट प्रभु रहे परन गृह छाइ॥13॥
भावार्थ:-वहाँ गृध्रराज जटायु से भेंट हुई। उसके साथ बहुत प्रकार से प्रेम बढ़ाकर प्रभुश्री रामचंद्रजी गोदावरीजी के समीप पर्णकुटी छाकर रहने लगे॥13॥

चौपाई :
*** जब ते राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भए मुनि बीती त्रासा॥ गिरि बन नदीं ताल छबि छाए। दिन दिन प्रति अति होहिं सुहाए॥1॥
भावार्थ:-जब से श्री रामजी ने वहाँ निवास किया, तब से मुनि सुखी होगए, उनका डर जाता रहा। पर्वत, वन, नदी और तालाब शोभा से छा गए। वे दिनोंदिन अधिक सुहावने (मालूम) होने लगे॥1॥
*** खग मृग बृंद अनंदित रहहीं। मधुप मधुर गुंजत छबि लहहीं॥ सो बन बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रगट रघुबीर बिराजा॥2॥
भावार्थ:-पक्षी और पशुओं के समूह आनंदित रहते हैं और भौंरे मधुर गुंजार करते हुए शोभा पारहे हैं। जहाँ प्रत्यक्ष श्री रामजी विराजमान हैं, उस वन का वर्णन सर्पराज शेषजी भी नहीं कर सकते॥2॥
*** एक बार प्रभु सुख आसीना। लछिमन बचन कहे छलहीना॥ सुर नर मुनि सचराचर साईं। मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं॥3॥
भावार्थ:-एक बार प्रभु श्री रामजी सुख से बैठे हुए थे। उस समय लक्ष्मणजी ने उनसेछलरहित (सरल) वचन कहे- हे देवता, मनुष्य, मुनि और चराचर के स्वामी! मैं अपने प्रभु की तरह (अपना स्वामी समझकर) आपसे पूछता हूँ॥3॥

*** मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा॥ कहहु ग्यान बिराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया॥4॥
भावार्थ:-हे देव! मुझे समझाकर वही कहिए, जिससे सब छोड़कर मैं आपकी चरणरज की ही सेवा करूँ। ज्ञान, वैराग्य और माया का वर्णन कीजिए और उस भक्ति को कहिए, जिसके कारण आप दया करते हैं॥4॥
दोहा :
*** ईस्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ। जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ॥14॥
भावार्थ:-हे प्रभो! ईश्वर और जीव का भेद भी सब समझाकर कहिए, जिससे आपके चरणों में मेरी प्रीति हो और शोक, मोह तथा भ्रम नष्ट हो जाएँ॥14॥ चौपाई :
*** थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई। सुनहु तात मति मन चित लाई॥ मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया॥1॥
भावार्थ:-(श्री रामजी ने कहा-) हे तात! मैं थोड़े ही में सब समझाकर कहे देता हूँ। तुम मन, चित्त और बुद्धि लगाकर सुनो! मैं और मेरा, तू और तेरा- यही माया है, जिसने समस्त जीवों को वश में कर रखा है॥1॥
*** गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥ तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। बिद्या अपर अबिद्या दोऊ॥2॥
भावार्थ:-इंद्रियों के विषयों को और जहाँ तक मन जाता है, हे भाई! उन सबको माया जानना। उसके भी एक विद्या और दूसरी अविद्या, इन दोनों भेदों को तुम सुनो॥2॥
*** एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा॥ एक रचइ जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें॥3॥
भावार्थ:-एक (अविद्या) दुष्ट (दोषयुक्त) है और अत्यंत दुःखरूप है, जिसके वश होकर जीव संसार रूपी कुएँ में पड़ा हुआ है और एक (विद्या) जिसके वश में गुण है और जो जगत् की रचना करती है, वह प्रभु से ही प्रेरित होती है, उसके अपना बल कुछ भी नही है॥3॥
*** ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं॥ कहिअ तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी॥4॥
भावार्थ:-ज्ञान वह है, जहाँ (जिसमें) मान आदि एक भी (दोष) नहीं है और जो सबसे समान रूप से ब्रह्म को देखता है। हे तात! उसी को परम वैराग्यवान् कहना चाहिए, जो सारी सिद्धियों को और तीनों गुणों को तिनके के समान त्याग चुका हो॥4॥ (जिसमें मान, दम्भ, हिंसा, क्षमाराहित्य, टेढ़ापन, आचार्य सेवा का अभाव, अपवित्रता, अस्थिरता, मन का निगृहीत न होना, इंद्रियों के विषय में आसक्ति, अहंकार, जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिमय जगत् में सुख-बुद्धि, स्त्री-पुत्र-घर आदि में आसक्ति तथा ममता, इष्ट और अनिष्ट की प्राप्ति में हर्ष-शोक, भक्ति का अभाव, एकान्त में मन न लगना, विषयी मनुष्यों के संग में प्रेम- ये अठारह न हों और नित्य अध्यात्म (आत्मा) में स्थिति

तथा तत्त्व ज्ञान के अर्थ (तत्त्वज्ञान के द्वारा जानने योग्य) परमात्मा का नित्य दर्शन हो, वही ज्ञान कहलाता है। देखिए गीता अध्याय 13/ 7 से 11)

दोहा :

*** माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव। बंध मोच्छ प्रद सर्बपर माया प्रेरक सीव॥15॥

भावार्थ:-जो माया को, ईश्वर को और अपने स्वरूप को नहीं जानता, उसे जीव कहना चाहिए। जो (कर्मानुसार) बंधन और मोक्ष देने वाला, सबसे परे और माया का प्रेरक है, वह ईश्वर है॥15॥

चौपाई

*** धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना॥ जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥1॥

भावार्थ:-धर्म (के आचरण) से वैराग्य और योग से ज्ञान होता है तथा ज्ञान मोक्ष का देने वाला है- ऐसा वेदों ने वर्णन किया है। और हे भाई! जिससे मैं शीघ्र ही प्रसन्न होता हूँ, वह मेरी भक्ति है जो भक्तों को सुख देने वाली है॥1॥

*** सो सुतंत्र अवलंब न आना। तेहि आधीन ग्यान बिग्याना॥ भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो संत होइँ अनुकूला॥2॥

भावार्थ:-वह भक्ति स्वतंत्र है, उसको (ज्ञान-विज्ञान आदि किसी) दूसरे साधन का सहारा (अपेक्षा) नहीं है। ज्ञान और विज्ञान तो उसके अधीन हैं। हे तात! भक्ति अनुपम एवं सुख की मूल है और वह तभी मिलती है, जब संत अनुकूल (प्रसन्न) होते हैं॥2॥

*** भगति कि साधन कहउँ बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी॥ प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती॥3॥

भावार्थ:-अब मैं भक्ति के साधन विस्तार से कहता हूँ- यह सुगम मार्ग है, जिससे जीव मुझको सहज ही पा जाते हैं। पहले तो ब्राह्मणों के चरणों में अत्यंत प्रीति हो और वेद की रीति के अनुसार अपने-अपने (वर्णाश्रम के) कर्मों में लगा रहे॥3॥

*** एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा॥ श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं॥4॥

भावार्थ:-इसका फल, फिर विषयों से वैराग्य होगा। तब (वैराग्य होने पर) मेरे धर्म (भागवत धर्म) में प्रेम उत्पन्न होगा। तब श्रवण आदि नौ प्रकार की भक्तियाँ दृढ़ होंगी और मन में मेरी लीलाओं के प्रति अत्यंत प्रेम होगा॥4॥

*** संत चरन पंकज अति प्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा॥ गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा॥5॥

भावार्थ:-जिसका संतों के चरणकमलों में अत्यंत प्रेम हो, मन, वचन और कर्म से भजन का दृढ़ नियम हो और जो मुझको ही गुरु, पिता, माता, भाई, पति और देवता सब कुछ जाने और सेवा में

दृढ़ हो,॥5॥

*** मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा॥ काम आदि मद दंभ न जाकें। तात निरंतर बस मैं ताकें॥6॥

भावार्थ:-मेरा गुण गाते समय जिसका शरीर पुलकित हो जाए, वाणी गदगद हो जाए और नेत्रों से (प्रेमाश्रुओं का) जल बहने लगे और काम, मद और दम्भ आदि जिसमें न हों, हे भाई! मैं सदा उसके वश में रहता हूँ॥6॥

दोहा :

*** बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम। तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम॥16॥

भावार्थ:-जिनको कर्म, वचन और मन से मेरी ही गति है और जो निष्काम भाव से मेरा भजन करते हैं, उनके हृदय कमल में मैं सदा विश्राम किया करता हूँ॥16॥ चौपाई :

*** भगति जोग सुनि अति सुख पावा। लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा॥ एहि बिधि कछुक दिन बीती। कहत बिराग ग्यान गुन नीती॥1॥

भावार्थ:-इस भक्ति योग को सुनकर लक्ष्मणजी ने अत्यंत सुख पाया और उन्होंने प्रभु श्री रामचंद्रजी के चरणों में सिर नवाया। इस प्रकार वैराग्य, ज्ञान, गुण और नीति कहते हुए कुछ दिन बीत गए॥1॥ शूर्पणखा की कथा, शूर्पणखा का खरदूषण के पास जाना और खरदूषणादि का वध

*** सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी॥ पंचबटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा॥2॥

भावार्थ:-शूर्पणखा नामक रावण की एक बहिन थी, जो नागिन के समान भयानक और दुष्ट हृदय की थी। वह एक बार पंचवटी में गई और दोनों राजकुमारों को देखकर विकल (काम से पीड़ित) हो गई॥2॥

*** भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी॥ होइ बिकल सक मनहि न रोकी। जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी॥3॥

भावार्थ:-(काकभुशुण्डिजी कहते हैं-) हे गरुड़जी! (शूर्पणखा- जैसी राक्षसी, धर्मज्ञान शून्य कामान्ध) स्त्री मनोहर पुरुष को देखकर, चाहे वह भाई, पिता, पुत्र ही हो, विकल हो जाती है और मन को नहीं रोक सकती। जैसे सूर्यकान्तमणि सूर्य कोदेखकर द्रवित हो जाती है (ज्वाला से पिघल जाती है)॥3॥

*** रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई। बोली बचन बहुत मुसुकाई॥ तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी। यह सँजोग बिधि रचा बिचारी॥4॥

भावार्थ:-वह सुन्दर रूप धरकर प्रभु के पास जाकर और बहुत मुस्कुराकर वचन बोली न तो तुम्हारे समान कोई पुरुष है, न मेरे समान स्त्री। विधाता ने यह संयोग (जोड़ा) बहुत विचार कर रचा है॥4॥

*** मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखेउँ खोजि लोक तिहु नाहीं॥ तातें अब लगि रहिउँ कुमारी। मनु माना कछु तुम्हहि निहारी॥5॥

भावार्थ:-मेरे योग्य पुरुष (वर) जगत्‌भर में नहीं है, मैंने तीनों लोकों को खोज देखा। इसी से मैं अब तक कुमारी (अविवाहित) रही। अब तुमको देखकर कुछ मन माना (चित्त ठहरा) है॥5॥

*** सीतहि चितइ कही प्रभु बाता। अहइ कुआर मोर लघु भ्राता॥ गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी। प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी॥6॥

भावार्थ:-सीताजी की ओर देखकर प्रभु श्री रामजी ने यह बात कही कि मेरा छोटा भाई कुमार है। तब वह लक्ष्मणजी के पास गई। लक्ष्मणजी ने उसे शत्रु की बहिन समझकर और प्रभु की ओर देखकर कोमल वाणी से बोले-॥6॥

*** सुंदरि सुनु मैं उन्ह कर दासा। पराधीन नहिं तोर सुपासा॥ प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा। जो कछु करहिं उनहि सब छाजा॥7॥

भावार्थ:-हे सुंदरी! सुन, मैं तो उनका दास हूँ। मैं पराधीन हूँ अतः तुम्हे सुभीता(सुख) न होगा। प्रभु समर्थ हैं, कोसलपुर के राजा है, वे जो कुछ करें, उन्हें सब फबता है॥7॥

*** सेवक सुख चह मान भिखारी। ब्यसनी धन सुभ गति बिभिचारी॥ लोभी जसु चह चार गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी॥8॥

भावार्थ:-सेवक सुख चाहे, भिखारी सम्मान चाहे, व्यसनी (जिसे जुए, शराब आदि का व्यसन हो) धन और व्यभिचारी शुभ गति चाहे, लोभी यश चाहे और अभिमानी चारों फल- अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चाहे, तो ये सब प्राणी आकाश को दुहकर दूध लेना चाहते हैं (अर्थात् असंभव बात को संभव करना चाहते हैं)॥8॥

*** पुनि फिरि राम निकट सो आई। प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई॥ लछिमन कहा तोहि सो बरई। जो तृन तोरि लाज परिहरई॥9॥

भावार्थ:-वह लौटकर फिर श्री रामजी के पास आई, प्रभु ने उसे फिर लक्ष्मणजी के पास भेज दिया। लक्ष्मणजी ने कहा- तुम्हें वही वरेगा, जो लज्जा को तृण तोड़कर (अर्थात् प्रतिज्ञा करके) त्याग देगा (अर्थात् जो निपट निर्लज्ज होगा)॥9॥

*** तब खिसिआनि राम पहिं गई। रूप भयंकर प्रगटत भई॥ सीतहि सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सयन बुझाई॥10॥

भावार्थ:-तब वह खिसियायी हुई (क्रुद्ध होकर) श्री रामजी के पास गई और उसने अपना भयंकर रूप प्रकट किया। सीताजी को भयभीत देखकर श्री रघुनाथजी ने लक्ष्मण को इशारा देकर कहा॥10॥

दोहा :

*** लछिमन अति लाघवँ सो नाक कान बिनु कीन्हि। ताके कर रावन कहँ मनौ चुनौती दीन्हि॥17॥

भावार्थ:-लक्ष्मणजी ने बड़ी फुर्ती से उसको बिना नाक-कान की कर दिया। मानो उसके हाथ रावण को चुनौती दी हो!॥17॥

चौपाई :

*** नाक कान बिनु भइ बिकरारा। जनु स्रवसैल गेरु कै धारा॥ खर दूषन पहिं गइ बिलपाता। धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता॥1॥

भावार्थ:-बिना नाक-कान के वह विकराल हो गई। (उसके शरीर से रक्त इस प्रकार बहने लगा) मानो (काले) पर्वत से गेरू की धारा बह रही हो। वह विलाप करती हुई खर-दूषण के पास गई (और बोली-) हे भाई! तुम्हारे पौरुष (वीरता) को धिक्कार है, तुम्हारे बल को धिक्कार है॥1॥

*** तेहिं पूछा सब कहेसि बुझाई। जातुधान सुनि सेन बनाई॥ धाए निसिचर निकर बरूथा। जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा॥2॥

भावार्थ:-उन्होंने पूछा, तब शूर्पणखा ने सब समझाकर कहा। सब सुनकर राक्षसों ने सेना तैयार की। राक्षस समूह झुंड के झुंड दौड़े। मानो पंखधारी काजल के पर्वतों का झुंड्हो॥2॥

*** नाना बाहन नानाकारा। नानायुध धर घोर अपारा॥ सूपनखा आगें करि लीनी। असुभ रूप श्रुति नासा हीनी॥3॥

भावार्थ:-वे अनेकों प्रकार की सवारियों पर चढ़े हुए तथा अनेकों आकार (सूरतों) के हैं। वे अपार हैं और अनेकों प्रकार के असंख्य भयानक हथियार धारण किए हुए हैं।उन्होंने नाक-कान कटी हुई अमंगलरूपिणी शूर्पणखा को आगे कर लिया॥3॥

*** असगुन अमित होहिं भयकारी। गनहिं न मृत्यु बिबस सब झारी॥ गर्जहिं तर्जहिं गगन उड़ाहीं। देखि कटकु भट अति हरषाहीं॥4॥

भावार्थ:-अनगिनत भयंकर अशकुन हो रहे हैं, परंतु मृत्यु के वश होने के कारण वे सब के सब उनको कुछ गिनते ही नहीं। गरजते हैं, ललकारते हैं और आकाश में उड़ते हैं। सेना देखकर योद्धा लोग बहुत ही हर्षित होते हैं॥4॥

*** कोउ कह जिअत धरहु द्वौ भाई। धरि मारहु तिय लेहु छड़ाई॥ धूरि पूरि नभ मंडल रहा। राम बोलाइ अनुज सन कहा॥5॥

भावार्थ:-कोई कहता है दोनों भाइयों को जीता ही पकड़ लो, पकड़कर मार डालो और स्त्री को छीन लो। आकाशमण्डल धूल से भर गया। तब श्री रामजी ने लक्ष्मणजी को बुलाकरउनसे कहा॥5॥

*** लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर। आवा निसिचर कटकु भयंकर॥ रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी। चले सहित श्री सर धनु पानी॥6॥

भावार्थ:-राक्षसों की भयानक सेना आ गई है। जानकीजी को लेकर तुम पर्वत की कंदरा में चले जाओ। सावधान रहना। प्रभु श्री रामचंद्रजी के वचन सुनकर लक्ष्मणजी हाथ मेंधनुष-बाण लिए श्री सीताजी सहित चले॥6॥

*** देखि राम रिपुदल चलि आवा। बिहसि कठिन कोदंड चढ़ावा॥7॥
भावार्थ:-शत्रुओं की सेना (समीप) चली आई है, यह देखकर श्री रामजी ने हँसकर कठिन धनुष को चढ़ाया॥7॥

छंद :
*** कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जट जूट बाँधत सोह क्यों। मरकत सयल पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यों॥कटि कसि निषंग बिसाल भुज गहि चाप बिसिख सुधारि कै। चितवत मनहुँ मृगराज प्रभु गजराज घटा निहारि कै॥
भावार्थ:-कठिन धनुष चढ़ाकर सिर पर जटा का जूड़ा बाँधते हुए प्रभु कैसे शोभित हो रहे हैं, जैसे मरकतमणि (पन्ने) के पर्वत पर करोड़ों बिजलियों से दो साँप लड़ रहे हों। कमर में तरकस कसकर, विशाल भुजाओं में धनुष लेकर और बाण सुधारकर प्रभु श्री रामचंद्रजी राक्षसोंकी ओर देख रहे हैं। मानों मतवाले हाथियों के समूह को (आता) देखकर सिंह (उनकी ओर) ताक रहा हो।
सोरठा :
*** आइ गए बगमेल धरहु धरहु धावत सुभट। जथा बिलोकि अकेल बाल रबिहि घेरत दनुज॥8॥
भावार्थ:-'पकड़ो-पकड़ो' पुकारते हुए राक्षस योद्धा बाग छोड़कर (बड़ी तेजी से) दौड़े हुए आए (और उन्होंने श्री रामजी को चारों ओर से घेर लिया), जैसे बालसूर्य (उदयकालीन सूर्य) को अकेला देखकर मन्देह नामक दैत्य घेर लेते हैं॥18॥

चौपाई :
*** प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी। थकित भई रजनीचर धारी॥ सचिव बोलि बोले खर दूषन। यह कोउ नृपबालक नर भूषन॥1॥
भावार्थ:-(सौंदर्य-माधुर्यनिधि) प्रभु श्री रामजी को देखकर राक्षसों की सेना थकित रह गई। वे उन पर बाण नहीं छोड़ सके। मंत्री को बुलाकर खर-दूषण ने कहा- यह राजकुमार कोई मनुष्यों का भूषण है॥1॥
*** नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते॥ हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुंदरताई॥2॥
भावार्थ:-जितने भी नाग, असुर, देवता, मनुष्य और मुनि हैं, उनमें से हमने न जाने कितने ही देखे, जीते और मार डाले हैं। पर हे सब भाइयों! सुनो, हमने जन्मभर में ऐसी सुंदरता कहीं नहीं देखी॥2॥
*** जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥ देहु तुरत निज नारि दुराई। जीअत भवन जाहु द्वौ भाई॥3॥
भावार्थ:-यद्यपि इन्होंने हमारी बहिन को कुरूप कर दिया तथापि ये अनुपम पुरुष वध करने योग्य

नहीं हैं। 'छिपाई हुई अपनी स्त्री हमें तुरंत दे दो और दोनों भाई जीते जीघर लौट जाओ'॥3॥

*** मोर कहा तुम्ह ताहि सुनावहु। तासु बचन सुनि आतुर आवहु॥ दूतन्ह कहा राम सन जाई। सुनत राम बोले मुसुकाई॥4॥

भावार्थ:-मेरा यह कथन तुम लोग उसे सुनाओ और उसका वचन (उत्तर) सुनकर शीघ्र आओ। दूतों ने जाकर यह संदेश श्री रामचंद्रजी से कहा। उसे सुनते ही श्री रामचंद्रजी मुस्कुराकर बोले-॥4॥

*** हम छत्री मृगया बन करहीं। तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं॥ रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं। एक बार कालहु सन लरहीं॥5॥

भावार्थ:-हम क्षत्रिय हैं, वन में शिकार करते हैं और तुम्हारे सरीखे दुष्ट पशुओं को तो ढूँढते ही फिरते हैं। हम बलवान् शत्रु देखकर नहीं डरते। (लड़ने को आवे तो) एक बार तो हम काल से भी लड़ सकते हैं॥5॥

*** जद्यपि मनुज दनुज कुल घालक। मुनि पालक खल सालक बालक॥ जौं न होइ बल घर फिरि जाहू। समर बिमुख मैं हतउँ न काहू॥6॥

भावार्थ:-यद्यपि हम मनुष्य हैं, परन्तु दैत्यकुल का नाश करने वाले और मुनियों की रक्षाकरने वाले हैं, हम बालक हैं, परन्तु दुष्टों को दण्ड देने वाले। यदि बल न हो तो घर लौट जाओ। संग्राम में पीठ दिखाने वाले किसी को मैं नहीं मारता॥6॥

*** रन चढ़ि करिअ कपट चतुराई। रिपु पर कृपा परम कदराई॥ दूतन्ह जाइ तुरत सब कहेऊ। सुनि खर दूषन उर अति दहेऊ॥7॥

भावार्थ:-रण में चढ़ आकर कपट-चतुराई करना और शत्रु पर कृपा करना (दया दिखाना) तो बड़ी भारी कायरता है। दूतों ने लौटकर तुरंत सब बातें कहीं, जिन्हें सुनकर खर-दूषण का हृदय अत्यंत जल उठा॥7॥

छंद :

*** उर दहेउ कहेउ कि धरहु धाए बिकट भट रजनीचरा। सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसु धरा॥ प्रभु कीन्हि धनुष टकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा। भए बधिर ब्याकुल जातुधान न ग्यान तेहि अवसर रहा॥

भावार्थ:-(खर-दूषण का) हृदय जल उठा। तब उन्होंने कहा- पकड़ लो (कैद कर लो)। (यह सुनकर) भयानक राक्षस योद्धा बाण, धनुष, तोमर, शक्ति (साँग), शूल (बरछी), कृपाण (कटार), परिघ और फरसा धारण किए हुए दौड़ पड़े। प्रभु श्री रामजी ने पहले धनुष काबड़ा कठोर, घोर और भयानक टंकार किया, जिसे सुनकर राक्षस बहरे और व्याकुल हो गए। उस समय उन्हें कुछ भी होश न रहा।

दोहा :

*** सावधान होइ धाए जानि सबल आराति। लागे बरषन राम पर अस्त्र सस्त्र बहु भाँति॥19 क॥

भावार्थ:-फिर वे शत्रु को बलवान् जानकर सावधान होकर दौड़े और श्री रामचन्द्रजी के ऊपर बहुत प्रकार के अस्त्र-शस्त्र बरसाने लगे॥19 (क)॥

*** तिन्ह के आयुध तिल सम करि काटे रघुबीर। तानि सरासन श्रवन लगि पुनि छाँड़े निज तीर॥19 ख॥

भावार्थ:-श्री रघुवीरजी ने उनके हथियारों को तिल के समान (टुकड़े-टुकड़े) करके काट डाला। फिर धनुष को कान तक तानकर अपने तीर छोड़े॥19 (ख)॥ छन्द :

*** तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल॥ कोपेउ समर श्रीराम। चले बिसिख निसित निकाम॥1॥

भावार्थ:-तब भयानक बाण ऐसे चले, मानो फुफकारते हुए बहुत से सर्प जारहे हैं। श्री रामचन्द्रजी संग्राम में क्रुद्ध हुए और अत्यन्त तीक्ष्णबाण चले॥1॥

*** अवलोकि खरतर तीर। मुरि चले निसिचर बीर॥ भए क्रुद्ध तीनिउ भाइ। जो भागि रन ते जाइ॥2॥

भावार्थ:-अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों को देखकर राक्षस वीर पीठ दिखाकर भाग चले। तब खर-दूषण और त्रिशिरा तीनों भाई क्रुद्ध होकर बोले- जो रण से भागकर जाएगा,॥2॥

*** तेहि बधब हम निज पानि। फिरे मरन मन महुँ ठानि॥ आयुध अनेक प्रकार। सनमुख ते करहिं प्रहार॥3॥

भावार्थ:-उसका हम अपने हाथों वध करेंगे। तब मन में मरना ठानकर भागते हुए राक्षस लौट पड़े और सामने होकर वे अनेकों प्रकार के हथियारों से श्री रामजी पर प्रहार करने लगे॥3॥

*** रिपु परम कोपे जानि। प्रभु धनुष सर संधानि॥ छाँड़े बिपुल नाराच। लगे कटन बिकट पिसाच॥4॥

भावार्थ:-शत्रु को अत्यन्त कुपित जानकर प्रभु ने धनुष पर बाण चढ़ाकर बहुत से बाण छोड़े, जिनसे भयानक राक्षस कटने लगे॥4॥

*** उर सीस भुज कर चरन। जहँ तहँ लगे महि परन॥ चिक्करत लागत बान। धर परत कुधर समान॥5॥

भावार्थ:-उनकी छाती, सिर, भुजा, हाथ और पैर जहाँ-तहाँ पृथ्वी पर गिरने लगे। बाण लगते ही वे हाथी की तरह चिंग्घाड़ते हैं। उनके पहाड़ के समान धड़ कट-कटकर गिर रहे हैं॥5॥

*** भट कटत तन सत खंड। पुनि उठत करि पाषंड॥ नभ उड़त बहु भुज मुंड। बिनु मौलि धावत रुंड॥6॥

भावार्थ:-योद्धाओं के शरीर कटकर सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं। वे फिर माया करके उठ खड़े होते हैं। आकाश में बहुत सी भुजाएँ और सिर उड़ रहे हैं तथा बिना सिर के धड़ दौड़ रहे हैं॥6॥

*** खग कंक काक सृगाल। कटकटहिं कठिन कराल॥7॥

भावार्थ:-चील (या क्रौंच), कौए आदि पक्षी और सियार कठोर और भयंकर कट-कट शब्द कर रहे हैं॥7॥

छन्द :

*** कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खर्पर संचहीं। बेतालबीर कपाल ताल बजाइ जोगिनि नंचहीं॥ रघुबीर बान प्रचंड खंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा। जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धर धरु धरु करहिं भयंकर गिरा॥1॥

भावार्थ:-सियार कटकटाते हैं, भूत, प्रेत और पिशाच खोपड़ियाँ बटोर रहे हैं (अथवा खप्पर भर रहे हैं)। वीर-वैताल खोपड़ियों पर ताल दे रहे हैं और योगिनियाँ नाच रही हैं। श्री रघुवीर के प्रचंड बाण योद्धाओं के वक्षःस्थल, भुजा और सिरों के टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं। उनके धड़ जहाँ-तहाँ गिर पड़ते हैं, फिर उठते और लड़ते हैं और 'पकड़ो-पकड़ो' का भयंकर शब्द करते हैं॥1॥

*** अंतावरीं गहि उड़त गीध पिसाच कर गहि धावहीं। संग्राम पुर बासी मनहुँ बहु बाल गुड़ी उड़ावहीं॥ मारे पछारे उर बिदारे बिपुल भट कहँरत परे। अवलोकि निज दल बिकल भट तिसिरादि खर दूषन फिरे॥2॥

भावार्थ:-अंतड़ियों के एक छोर को पकड़कर गीध उड़ते हैं और उन्हीं का दूसरा छोर हाथ से पकड़कर पिशाच दौड़ते हैं, ऐसा मालूम होता है मानो संग्राम रूपी नगर के निवासी बहुत से बालक पतंग उड़ा रहे हों। अनेकों योद्धा मारे और पछाड़े गए बहुत से, जिनके हृदय विदीर्ण हो गए हैं, पड़े कराह रहे हैं। अपनी सेना को व्याकुल देखर त्रिशिरा और खर-दूषण आदि योद्धा श्री रामजी की ओर मुड़े॥2॥

*** सरसक्ति तोमर परसु सूल कृपानएकहि बारहीं। करि कोप श्री रघुबीर पर अगनित निसाचर डारहीं॥ प्रभु निमिष महुँ रिपु सर निवारि पचारि डारे सायका। दस दस बिसिख उर माझ मारे सकल निसिचर नायका॥3॥

भावार्थ:-अनगिनत राक्षस क्रोध करके बाण, शक्ति, तोमर, फरसा, शूल और कृपाण एक ही बार में श्री रघुवीर पर छोड़ने लगे। प्रभु ने पल भर में शत्रुओं के बाणों को काटकर, ललकारकर उन पर अपने बाण छोड़े। सब राक्षस सेनापतियों के हृदय में दस-दस बाण मारे॥3॥

*** महि परत उठि भट भिरत मरत न करत माया अति घनी। सुर डरत चौदह सहस प्रेत बिलोकि एक अवध धनी॥ सुर मुनि सभय प्रभु देखिमायानाथ अति कौतुक कर्‌यो। देखहिं परसपर राम करि संग्राम रिपु दल लरि मर्‌यो॥4॥

भावार्थ:-योद्धा पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं, फिर उठकर भिड़ते हैं। मरते नहीं, बहुत प्रकार की अतिशय माया रचते हैं। देवता यह देखकर डरते हैं कि प्रेत (राक्षस) चौदह हजार हैं और अयोध्यानाथ श्री रामजी अकेले हैं। देवता और मुनियों को भयभीत देखकर माया के स्वामी प्रभु ने एक बड़ा कौतुक किया, जिससे शत्रुओं की सेना एक-दूसरे को राम रूप देखने लगी और आपस में ही युद्ध करके

लड़ मरी॥4॥

दोहा :

*** राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान। करि उपाय रिपु मारे छन महुँ कृपानिधान॥20 क॥

भावार्थ:-सब ('यही राम है, इसे मारो' इस प्रकार) राम-राम कहकर शरीर छोड़ते हैं और निर्वाण (मोक्ष) पद पाते हैं। कृपानिधान श्री रामजी ने यह उपाय करके क्षण भर में शत्रुओं को मार डाला॥20 (क)॥

*** हरषित बरषहिं सुमन सुर बाजहिं गगन निसान। अस्तुति करि करि सब चले सोभित बिबिध बिमान॥20 ख॥

भावार्थ:-देवता हर्षित होकर फूल बरसाते हैं, आकाश में नगाड़े बज रहे हैं। फिर वे सब स्तुति कर-करके अनेकों विमानों पर सुशोभित हुए चले गए॥20 (ख)॥

चौपाई :

*** जब रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर नर मुनि सब के भय बीते॥ तब लछिमन सीतहि लै आए। प्रभु पद परत हरषि उर लाए॥1॥

भावार्थ:-जब श्री रघुनाथजी ने युद्ध में शत्रुओं को जीत लिया तथा देवता, मनुष्य और मुनि सबके भय नष्ट हो गए, तब लक्ष्मणजी सीताजी को ले आए। चरणों में पड़ते हुए उनको प्रभु ने प्रसन्नतापूर्वक उठाकर हृदय से लगा लिया॥1॥

*** सीता चितव स्याम मृदु गाता। परम प्रेम लोचन न अघाता॥ पंचबटीं बसि श्री रघुनायक। करत चरित सुर मुनि सुखदायक॥2॥

भावार्थ:-सीताजी श्री रामजी के श्याम और कोमल शरीर को परम प्रेम के साथ देख रही हैं, नेत्र अघाते नहीं हैं। इस प्रकार पंचवटी में बसकर श्री रघुनाथजी देवताओं और मुनियों को सुख देने वाले चरित्र करने लगे॥2॥